Chapter अठारह

भगवान् बलराम द्वारा प्रलम्बासुर का वध

इस अध्याय में प्रलम्बासुर के मारे जाने का वर्णन हुआ है। वृन्दावन में आनन्दमय क्रीड़ा करते समय भगवान् बलदेव प्रलम्बासुर के कन्धों पर चढ़ गये और उसके सिर पर मुष्टिक-प्रहार करके उसका अन्त कर दिया।

कृष्ण तथा बलराम की लीला-भूमि वृन्दावन ग्रीष्मकाल में भी वसन्त ऋतु के सभी गुणों से

सज्जित रहती थी। उस समय बलराम तथा अन्य ग्वालों से घिर कर श्रीकृष्ण नाना प्रकार की क्रीड़ाओं में मग्न हो जाते थे। एक दिन वे जी भर कर नाच रहे थे, गा रहे थे तथा खेल रहे थे। तभी प्रलम्ब नामक असुर ग्वालबाल का वेश बनाकर उनके बीच में घुस आया। सर्वज्ञ श्रीकृष्ण ने उस वेश में उसे पहचान लिया और कैसे उसे मारा जाय इस की योजना बनाते हुए भी उसके साथ मित्र-जैसा बर्ताव करते रहे।

तब कृष्ण ने बलदेव तथा अपने तरुण मित्रों से कहा कि वे पारस्परिक विरोधी टोलियों में बँटकर कोई खेल खेलें। कृष्ण तथा बलराम ने अगुवई करते हुए बालकों को दो टोलियों में बाँट दिया और यह तय किया जो खेल में हारेगा वह जीतने वाले को अपने कंधों पर उठाएगा। इस तरह जब बलराम की टोली के सदस्य श्रीदामा तथा वृषभ जीत गये तो कृष्ण तथा उनकी टोली के एक और बालक ने उन सबों को अपने कंधों पर चढ़ाया। प्रलम्बासुर ने सोचा कि अजेय कृष्ण से टक्कर लेना मुश्किल होगा अत: वह बलराम से भिड़ गया और हार गया। उसने बलराम को अपनी पीठ पर चढ़ा लिया और तेजी से ले जाने लगा किन्तु बलराम सुमेरु पर्वत के समान भारी हो गये और उन्हें ले जाने में असमर्थ होने के कारण उस असुर ने अपना असली रूप प्रचण्ड किया। जब बलराम ने उसके भयानक रूप को देखा तो उन्होंने अपनी मुष्टिका से उसके सिर पर घोर प्रहार किया। इस प्रहार से असुर का सिर उसी प्रकार विदीर्ण हो गया जिस प्रकार इन्द्र के वज्र से पर्वत चूर चूर हो जाते हैं। वह असुर बारम्बार रक्त वमन करता हुआ भूमि पर गिर पड़ा। जब ग्वालबालों ने बलराम को वापस आते देखा तो उन्होंने बधाइयाँ दीं और प्रसन्नतापूर्वक उनका आलिंगन किया तथा देवताओं ने स्वर्ग से पुष्पवर्षा करते हुए उनका यशोगान किया।

श्रीशुक उवाच
अथ कृष्ण: परिवृतो ज्ञातिभिर्मुदितात्मभि: ।
अनुगीयमानो न्यविशद्व्रजं गोकुलमण्डितम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुक: उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; अथ—इसके बाद; कृष्ण:—कृष्ण; परिवृत:—घिर कर; ज्ञातिभि:—अपने संगियों से; मुदित-आत्मभि:—स्वभाव से प्रसन्न रहने वाले; अनुगीयमान:—यश का गान किया जाता हुआ; न्यविशत्—प्रविष्ट हुए; व्रजम्—व्रज में; गो-कुल—गायों के झुंडों से; मण्डितम्—सुशोभित।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : अपने आनन्द-विभोर साथियों से घिरे हुए, जो निरन्तर उनके

यश का गान कर रहे थे, श्रीकृष्ण व्रज ग्राम में प्रविष्ट हुए जो गौवों के झुंडों से मण्डित था।

व्रजे विक्रीडतोरेवं गोपालच्छद्ममायया ।
ग्रीष्मो नामर्तुरभवन्नातिप्रेयाञ्छरीरिणाम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

व्रजे—वृन्दावन में; विक्रीडतोः—दोनों के खेलते हुए; एवम्—इस प्रकार; गोपाल—ग्वालबालों का; छद्म—वेश बनाकर; मायया—माया द्वारा; ग्रीष्मः—गर्मी; नाम—नामक; ऋतुः—ऋतु; अभवत्—आ गई; न—नहीं; अति-प्रेयान्—अत्यधिक अनुकूल; शरीरिणाम्—देहधारियों के लिए।

जब कृष्ण तथा बलराम इस तरह से सामान्य ग्वालबालों के वेश में वृन्दावन में जीवन का आनन्द ले रहे थे तो शनै-शनै ग्रीष्म ऋतु आ गई। यह ऋतु देहधारियों को अधिक सुहावनी नहीं लगती।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने *भगवान् श्रीकृष्ण* (भाग १ अध्याय १८) में इस प्रकार टीका की है, ''भारत में ग्रीष्म ऋतु का अधिक स्वागत नहीं होता क्योंकि गर्मी बहुत पड़ती है किन्तु वृन्दावन में हर व्यक्ति प्रसन्न था क्योंकि ग्रीष्म वसन्त के समान लग रही थी।''

स च वृन्दावनगुणैर्वसन्त इव लक्षितः ।
यत्रास्ते भगवान्साक्षाद्रामेण सह केशवः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

सः—वह (ग्रीष्म ऋतु); च—फिर भी; वृन्दावन—वृन्दावन के; गुणैः—दिव्य गुणों के कारण; वसन्तः—वसन्त ऋतु; इव—सदृश; लक्षितः—लक्षण प्रकट करती हुई; यत्र—जिसमें (वृन्दावन); आस्ते—रहते हैं; भगवान्—भगवान्; साक्षात्—स्वयं; रामेण सह—बलराम सहित; केशवः—श्रीकृष्ण।

फिर भी चूँकि साक्षात् भगवान् कृष्ण बलराम सहित वृन्दावन में रह रहे थे अतएव ग्रीष्म ऋतु वसन्त के गुण प्रकट कर रही थी। वृन्दावन की भूमि के ऐसे हैं गुण।

यत्र निर्झरनिर्ह्रादनिवृत्तस्वनझिल्लिकम् ।
शश्वत्तच्छीकरजीषद्रुममण्डलमण्डितम् ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

यत्र—जिस (वृन्दावन) में; निर्झर—झरनों की; निर्ह्रादं—तीव्र ध्वनि ने; निवृत्त—रोक दिया; स्वन—ध्वनि; झिल्लिकम्—झींगुरों की; शश्वत्—निरन्तर; तत्—उन (झरनों) की; शीकर—जल की बूँदों से; ऋजीष—भीगे; द्रुम—वृक्षों के; मण्डल—समूहों से; मण्डितम्—सुशोभित।

वृन्दावन में झरनों की तीव्र ध्वनि से झींगुरों की झंकार छिप गई और उन झरनों की फुहार से निरन्तर नम रहते हुए वृक्षों के समूहों ने सम्पूर्ण क्षेत्र को मण्डित कर दिया।

तात्पर्य : इस श्लोक में तथा अगले तीन श्लोकों में वृन्दावन में ग्रीष्म ऋतु में भी वसन्त के लक्षण प्रकट होने का वर्णन हुआ है।

सरित्सरःप्रस्रवणोर्मिवायुना
कह्लारकञ्जोत्पलरेणुहारिणा ।
न विद्यते यत्र वनौकसां दवो
निदाघवह्न्यर्कभवोऽतिशाद्वले ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

सरित्—नदियों; सरः—झीलों का; प्रस्रवण—धाराओं का (स्पर्श करके); ऊर्मि—तथा लहरें; वायुना—वायु द्वारा; कह्लार-कञ्ज-उत्पल—कह्लार, कंज तथा उत्पल (कमलों) के; रेणु—पराग-कण; हारिणा—ले जाते हुए; न विद्यते—नहीं था; यत्र—जिसमें; वन-ओकसाम्—जंगल के निवासियों के लिए; दवः—तपती धूप; निदाघ—ग्रीष्म ऋतु की; वह्नि—दावाग्नि से; अर्क—तथा सूर्य से; भवः—उत्पन्न; अति-शाद्वले—जहाँ प्रचुर हरी भरी घास थी।

सरोवरों की लहरों तथा बहती हुई नदियों का स्पर्श करती हुई अनेक प्रकार के कमलों तथा कमलिनियों के पराग-कण अपने साथ लेती हुई वायु सम्पूर्ण वृन्दावन को शीतल बनाती थी। इस तरह वहाँ के निवासियों को ग्रीष्म की जलती धूप तथा मौसमी दावाग्नियों से उत्पन्न गर्मी से कष्ट नहीं उठाना पड़ता था। निस्सन्देह वृन्दावन ताजी हरीभरी घास से भरापुरा था।

अगाधतोयह्रदिनीतटोर्मिभि-
र्द्रवत्पुरीष्याः पुलिनैः समन्ततः ।
न यत्र चण्डांशुकरा विषोल्बणा
भुवो रसं शाद्वलितं च गृह्णते ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

अगाध—बहुत गहरा; तोय—जल; ह्रदिनी—नदियों के; तट—किनारों पर; ऊर्मिभिः—लहरों से; द्रवत्—द्रवीभूत; पुरीष्याः—कीचड़; पुलिनैः—रेतीले तटों से; समन्ततः—चारों ओर; न—नहीं; यत्र—जिस पर; चण्ड—सूर्य की; अंशु-कराः—किरणें; विष—विष के समान; उल्बणाः—विकराल; भुवः—पृथ्वी पर; रसम्—रस; शाद्वलितम्—हरियाली; च—तथा; गृह्णते—लेती हैं।

गहरी नदियाँ अपनी उठती लहरों से अपने तटों को तर करके उन्हें गीला तथा दलदला बना देती थीं। इस तरह विष की तरह विकराल सूर्य की किरणें न तो पृथ्वी के रस को उड़ा पातीं न इसकी हरी घास को सुखा पातीं।

वनं कुसुमितं श्रीमन्नदच्चित्रमृगद्विजम् ।
गायन्मयूरभ्रमरं कूजत्कोकिलसारसम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

वनम्—जंगल; कुसुमितम्—फूलों से पूर्ण; श्रीमत्—अत्यन्त सुन्दर; नदत्—शोर करते; चित्र—नाना प्रकार के; मृग—पशु; द्विजम्—तथा पक्षियों को; गायन्—गाते हुए; मयूर—मोर; भ्रमरम्—तथा भौंरों को; कूजत्—कुहू कुहू करते; कोकिल—कोयलों; सारसम्—तथा सारसों को।

फूलों से वृन्दावन बड़े ही सुन्दर ढंग से सजा हुआ था और नाना प्रकार के पशु तथा पक्षी अपनी ध्वनि से उसे पूरित कर रहे थे। मोर तथा भौंरे गा रहे थे और कोयल तथा सारस कुहू कुहू कर रहे थे।

क्रीडिष्यमाणस्तत्कृष्णो भगवान्बलसंयुतः ।
वेणुं विरणयन्गोपैर्गोधनैः संवृतोऽविशत् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

क्रीडिष्यमाणः—क्रीड़ा करने की इच्छा से; तत्—उस (वृन्दावन); कृष्णः—कृष्ण; भगवान्—भगवान्; बल-संयुतः—बलराम के साथ; वेणुम्—अपनी वंशी; विरणयन्—बजाते हुए; गोपैः—ग्वालबालों से; गो-धनैः—गौवों से, जो कि उनकी सम्पति हैं; संवृतः—घिरे हुए; अविशत्—प्रविष्ट हुए।

क्रीड़ा करने की इच्छा से, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण ग्वालबालों भगवान् बलराम सहित तथा गौवों से घिर कर अपनी बाँसुरी बजाते हुए वृन्दावन के जंगल में प्रविष्ट हुए।

प्रवालबर्हस्तबकस्त्रग्धातुकृतभूषणाः ।
रामकृष्णादयो गोपा ननृतुर्युयुधुर्जगुः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

प्रवाल—कोंपलें; बर्ह—मोर पंख; स्तबक—छोटे छोटे फूलों के गुच्छे; स्त्रक्—मालाएँ; धातु—तथा रंगीन खनिज (गेरू); कृत-भूषणाः—उन्हें अपना आभूषण बनाकर; राम-कृष्ण-आदयः—बलराम, कृष्ण इत्यादि; गोपाः—ग्वालबाल; ननृतुः—नाचने लगे; युयुधुः—लड़ने लगे; जगुः—गाने लगे।

कोंपलों, मोरपंखों, मालाओं, फूल की कलियों के गुच्छों तथा रंगविरंगे खनिज पदार्थों से अपने आपको सजाकर बलराम, कृष्ण तथा उनके ग्वालमित्र नाचने लगे, कुश्ती लड़ने तथा गाने लगे।

कृष्णस्य नृत्यतः केचिज्जगुः केचिदवादयन् ।
वेणुपाणितलैः शृङ्गैः प्रशशंसुरथापरे ॥ १० ॥

शब्दार्थ

कृष्णस्य नृत्यतः—कृष्ण के नाचते समय; केचित्—उनमें से कोई; जगुः—गाने लगा; केचित्—कोई; अवादयन्—बजाने लगा; वेणु—वंशी; पाणि-तलैः—खड़ तालियों से; शृङ्गैः—सींग से; प्रशशंसुः—प्रशंसा (वाहवाही) करने लगे; अथ—तथा; अपरे—अन्य लोग।

जब कृष्ण नाचने लगे तो कुछ बालक गाकर और कुछ बाँसुरी, हाथ के मंजीरे तथा भैसों

के सींग बजा बजाकर उनका साथ देने लगे तथा कुछ अन्य बालक उनके नाच की प्रशंसा करने लगे।

तात्पर्य : श्रीकृष्ण को प्रोत्साहन देने की इच्छा से कुछ ग्वालबालों ने उनके नाच की खुल कर प्रशंसा की।

गोपजातिप्रतिच्छन्ना देवा गोपालरूपिणौ ।
ईडिरे कृष्णरामौ च नटा इव नटं नृप ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

गोप-जाति—ग्वालों की जाति के सदस्यों के रूप में; प्रतिच्छन्नाः—वेश बनाये; देवाः—देवताओं ने; गोपाल-रूपिणौ—ग्वालबालों का रूप धारण किये; ईडिरे—पूजा की; कृष्ण-रामौ—कृष्ण तथा बलराम की; च—तथा; नटाः—पेशेवर नर्तकों; इव—सदृश; नटम्—अन्य नर्तक; नृप—हे राजन्।

हे राजन्, देवताओं ने गोप जाति के सदस्यों का वेश बनाया और जिस तरह नाटक के नर्तक दूसरे नर्तक की प्रशंसा करते हैं उसी तरह उन्होंने ग्वालबालों के रूप में प्रकट हुए कृष्ण तथा बलराम की पूजा की।

भ्रमणैर्लङ्घनैः क्षेपैरास्फोटनविकर्षणैः ।
चिक्रीडतुर्नियुद्धेन काकपक्षधरौ क्वचित् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

भ्रमणैः—चक्कर लगाकर; लङ्घनैः—कूदफाँद कर; क्षेपैः—फेंककर; आस्फोटन—पटकी देकर; विकर्षणैः—तथा घसीट कर; चिक्रीडतुः—उन्होंने (कृष्ण तथा बलराम ने) क्रीड़ा की; नियुद्धेन—लड़ते हुए; काक-पक्ष—बालों के गुच्छा दोनों ओर लटकते; धरौ—पकड़ते हुए; क्वचित्—कभी।

कृष्ण तथा बलराम चक्कर काटते, कूदते, फेंकते, थपथपाते तथा लड़ते भिड़ते हुए अपने ग्वाल सखाओं के साथ खेलने लगे। कभी कभी कृष्ण तथा बलराम बालकों के सिरों की चुटिया खींच लेते थे।

तात्पर्य : आचार्यों ने इस श्लोक की व्याख्या इस प्रकार की है *भ्रमणै* शब्द बताता है कि बालक मशीनों का अनुकरण करते हुए कभी कभी तब तक चक्कर लगाते जब तक घुमरी नहीं आने लगती थी। कभी कभी वे कूदते *(लंघनैः)*। *क्षेपैः* शब्द बतलाता है कि वे कभी कभी गेंद या पत्थर जैसी वस्तु फेंकते और कभी कभी वे एक दूसरे को अपनी भुजाओं में जकड़ कर दूर पटक देते। *आस्फोटन* का अर्थ है कि वे एक दूसरे के कंधे थपथपाते या पीठ ठोंकते। *विकर्षणै* शब्द सूचित करता है कि खेल

खेल में वे एक दूसरे को घसीटते थे। *नियुद्धेन* शब्द ताल ठोंककर कुश्ती लड़ने तथा अन्य प्रकार की मैत्रीपूर्ण लड़ाई करने को सूचित करता है। *काकपक्षधरौ* का अर्थ है कि कभी कभी कृष्ण तथा बलराम खेल-खेल में अन्य बालकों की चुटिया पकड़ कर खींच लेते थे।

क्वचिन्नृत्यत्सु चान्येषु गायकौ वादकौ स्वयम् ।
शशंसतुर्महाराज साधु साध्विति वादिनौ ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

क्वचित्—कभी; नृत्यत्सु—नृत्य करते समय; च—तथा; अन्येषु—अन्यों के; गायकौ—दोनों (कृष्ण तथा बलराम) गाते हुए; वादकौ—दोनों बाजा बजाते हुए; स्वयम्—स्वयं; शशंसतुः—प्रशंसा करते; महा-राज—हे महान् राजा; साधु साधु इति—बहुत अच्छा, बहुत अच्छा; वादिनौ—कहते हुए।

हे राजन्, जब अन्य बालक नाचते होते तो कृष्ण तथा बलराम कभी कभी गीत तथा वाद्य संगीत से उनका साथ देते और कभी कभी वे दोनों 'बहुत अच्छा', 'बहुत अच्छा' कहकर लड़कों की प्रशंसा करते थे।

क्वचिद्बिल्वैः क्वचित्कुम्भैः क्वचामलकमुष्टिभिः ।
अस्पृश्यनेत्रबन्धाद्यैः क्वचिन्मृगखगेहया ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

क्वचित्—कभी; बिल्वैः—बेल के फल से; क्वचित्—कभी; कुम्भैः—कुम्भ फलों से; क्वच—तथा कभी; आमलक-मुष्टिभिः—मुट्ठी भर आँवलों से; अस्पृश्य—छुई-छुऔअल खेल; नेत्र-बन्ध—आँख मिचौनी में एक दूसरे को पहचानने की कोशिश करते हुए; आद्यैः—इत्यादि द्वारा; क्वचित्—कभी; मृग—पशु; खग—तथा पक्षियों की तरह; ईहया—नकल करते हुए।

ग्वालबाल कभी बिल्व या कुम्भ फलों से खेलते और कभी मुट्ठी में आमलक फलों को लेकर खेलते। कभी वे एक दूसरे को छूने का या आँख मिचौनी के समय किसी को पहचानने का खेल खेलते तो कभी वे पशुओं तथा पक्षियों की नकल उतारते।

तात्पर्य : श्रील सनातन गोस्वामी व्याख्या करते हैं कि आद्यैशब्द एक दूसरे का पीछा करने तथा पुल बनाने जैसे खेलों का संकेत करता है। दोपहर में जब कृष्ण विश्राम करते होते तो एक अन्य लीला होती थी। पास से गीत गाती तरुण गोपिकाएँ गुजरतीं तो कृष्ण के मित्र उनसे दूध का भाव पूछने का बहाना करते। तब ये लड़के उनका दही तथा अन्य वस्तुएँ चुरा लेते और भाग जाते। कृष्ण, बलराम तथा उनके मित्र नावों द्वारा नदी पार करने का भी खेल खेला करते थे।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इसके आगे व्याख्या करते हैं कि कुछ बालक फलों को हवा में उछाल

कर दूसरे फलों को फेंक कर उन्हें मारने का खेल खेलते। नेत्रबन्ध ऐसे खेल का सूचक है, जिसमें एक लड़का आँख मूँदे हुए बालक के पीछे से आकर उसकी आँखों पर अपनी हथेली रखता था। तब उसकी हथेली को छूकर ही आँख मूँदे लड़के को बतलाना पड़ता कि वह कौन है। ऐसे सभी खेलों में लड़के दाँव लगाते थे जिससे जीतने वाले को इनाम में वंशी या छड़ी देनी पड़ती। कभी कभी लड़के जंगली जानवरों के लड़ने की विधियों की नकल उतारते और कभी पक्षियों की तरह चीं चीं करते।

क्वचिच्च दर्दुरप्लावैर्विविधैरुपहासकैः ।
कदाचित्स्यन्दोलिकया कर्हिचिन्नृपचेष्टया ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

क्वचित्—कभी कभी; च—तथा; दर्दुर—मेढकों की तरह; प्लावैः—कूद कर; विविधैः—अनेक प्रकार के; उपहासकैः—ठिठोलियों से; कदाचित्—कभी कभी; स्यन्दोलिकया—झूले में पेंग मार कर; कर्हिचित्—कभी कभी; नृप-चेष्टया—राजा की नकल करके।

कभी कभी वे मेढ़कों की तरह फुदक फुदक कर चलते, कभी तरह तरह के हास परिहास करते, कभी झूले में झूलते और कभी राजाओं की नकल उतारते।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने *नृपचेष्टया* शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है : वृन्दावन में एक स्थान था, जहाँ पर यमुना को पार करने वालों को थोड़ा-सा कर देना पड़ता था। कभी कभी ग्वालबाल इस स्थान पर एकत्र होकर वृन्दावन की तरुण गोपियों को नदी पार करने से पहले कर देने के लिए बाध्य करते। ऐसे कार्य हँसी-मजाक से भरे होते थे।

एवं तौ लोकसिद्धाभिः क्रीडाभिश्चेरतुर्वने ।
नद्यद्रिद्रोणिकुञ्जेषु काननेषु सरःसु च ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार से; तौ—वे दोनों, कृष्ण तथा बलराम; लोक-सिद्धाभिः—मानव समाज में भली भाँति ज्ञात; क्रीडाभिः—क्रीड़ाओं से; चेरतुः—घूमते हुए; वने—जंगल में; नदी—नदियों; अद्रि—पर्वतों; द्रोणि—घाटियों; कुञ्जेषु—तथा कुंजों के बीच; काननेषु—छोटे जंगलों में; सरःसु—सरोवरों के किनारे; च—तथा।

इस तरह से कृष्ण तथा बलराम वृन्दावन की नदियों, पर्वतों, घाटियों, कुंजों, वृक्षों तथा सरोवरों के बीच घूमते हुए सभी प्रकार के प्रसिद्ध खेल खेलते रहते।

पशूंश्चारयतोर्गोपैस्तद्वने रामकृष्णयोः ।
गोपरूपी प्रलम्बोऽगादसुरस्तज्जिहीर्षया ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

पशून्—पशुओं को; चारयतोः—दोनों व्यक्ति चराते हुए; गोपैः—ग्वालबालों के साथ; तत्-वने—उस जंगल में, वृन्दावन में; राम-कृष्णयोः—राम तथा कृष्ण; गोप-रूपी—ग्वालबाल का रूप धारण कर; प्रलम्बः—प्रलम्ब; अगात्—आया; असुरः—असुर; तत्—उनको; जिहीर्षया—उठाकर भाग जाने (हरण करने) की इच्छा से।

इस तरह जब उस वृन्दावन के जंगल में राम, कृष्ण तथा उनके ग्वालमित्र गौवें चरा रहे थे तो प्रलम्ब नामक असुर उनके बीच में घुस आया। कृष्ण तथा बलराम का हरण करने के इरादे से उसने ग्वालबाल का वेश बना लिया था।

तात्पर्य : कृष्ण तथा बलराम द्वारा सामान्य बालकों की तरह कार्य करने का वर्णन करने के बाद अब शुकदेव गोस्वामी भगवान् की ऐसी दिव्य लीला का उद्घाटन करने जा रहे हैं, जो मानव-कार्यों की सीमा से परे है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार प्रलम्बासुर ने उस बालक विशेष का वेश धारण किया था, जो उस दिन किसी कार्यवश अपने घर पर ही रह गया था।

तं विद्वानपि दाशार्हो भगवान्सर्वदर्शनः ।
अन्वमोदत तत्सख्यं वधं तस्य विचिन्तयन् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस प्रलम्बासुर को; विद्वान्—भलीभाँति जानते हुए; अपि—यद्यपि; दाशार्हः—दशार्ह के वंशज; भगवान्—भगवान् ने; सर्व-दर्शनः—सर्वज्ञ; अन्वमोदत—स्वीकार कर ली; तत्—उसके साथ; सख्यम्—मित्रता; वधम्—वध; तस्य—उसका; विचिन्तयन्—सोचते हुए।

चूँकि दशार्ह वंश में उत्पन्न भगवान् श्रीकृष्ण सब कुछ देखते हैं अतएव वे जान गये कि वह असुर कौन है। फिर भी भगवान् ने ऐसा दिखावा किया जैसे कि वे उसे अपना मित्र मान चुके हों जबकि वे गम्भीरतापूर्वक यह विचार कर रहे थे कि उसको कैसे मारा जाय।

तत्रोपाहूय गोपालान्कृष्णः प्राह विहारवित् ।
हे गोपा विहरिष्यामो द्वन्द्वीभूय यथायथम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

तत्र—तत्पश्चात्; उपाहूय—बुलाकर; गोपालान्—ग्वालबालों को; कृष्णः—कृष्ण ने; प्राह—कहा; विहार-वित्—समस्त क्रीड़ाओं के ज्ञाता; हे गोपाः—हे ग्वालबालो; विहरिष्यामः—चलो खेलें; द्वन्द्वी-भूय—दो टोलियों में बँटकर; यथा-यथम्—उचित रीति से।

तब समस्त क्रीड़ाओं के ज्ञाता कृष्ण ने सारे ग्वालबालों को बुलाया और उनसे इस प्रकार कहा : हे ग्वालबालो, अब चलो खेलें, हम अपने आपको दो समान टोलियों में बाँट लें।

तात्पर्य : *यथायथम्* शब्द का अर्थ यह है कि कृष्ण निस्सन्देह चाहते थे कि दोनों टोलियाँ

एकसमान हों जिससे खेल अच्छा हो सके। खेल का आनन्द लूटने के साथ ही इस खेल का उद्देश्य प्रलम्बासुर को मारना था।

तत्र चक्रु: परिवृढौ गोपा रामजनार्दनौ ।
कृष्णसङ्घट्टिन: केचिदासन्रामस्य चापरे ॥ २० ॥

शब्दार्थ

तत्र—उस खेल में; चक्रु:—उन्होंने बनाये; परिवृढौ—दो अगुआ; गोपा:—ग्वालबाल; राम-जनार्दनौ—बलराम तथा कृष्ण; कृष्ण-सङ्घट्टिन:—कृष्ण की टोली के सदस्य; केचित्—उनमें से कुछ; आसन्—हो गये; रामस्य—बलराम के; च—तथा; अपरे—अन्य।

ग्वालबालों ने कृष्ण तथा बलराम को दोनों टोलियों का अगुआ (नायक) चुन लिया। कुछ बालक कृष्ण की ओर थे और कुछ बलराम के साथ थे।

आचेरुर्विविधा: क्रीडा वाह्यवाहकलक्षणा: ।
यत्रारोहन्ति जेतारो वहन्ति च पराजिता: ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

आचेरु:—सम्पन्न किया; विविधा:—तरह तरह के; क्रीडा:—खेल; वाह्य—ले जाये जाने वाले द्वारा; वाहक—ले जाने वाला; लक्षणा:—लक्षणों से युक्त; यत्र—जिसमें; आरोहन्ति—चढ़ते हैं; जेतार:—जीतने वाले; वहन्ति—ढोते हैं, ले जाते हैं; च—तथा; पराजिता:—हारने वाले।

बालकों ने तरह तरह के खेल खेले जिनमें पीठ पर चढ़ना तथा उठाना जैसे खेल होते हैं। इन खेलों में जीतने वाले हार जाने वालों की पीठ पर चढ़ते हैं और हारने वाले उन्हें अपनी पीठ पर चढ़ाते हैं।

तात्पर्य : श्रील सनातन गोस्वामी ने विष्णु पुराण (५.९.१२) से निम्नलिखित श्लोक इस संदर्भ में उद्धृत किया है—

हरिणाक्रीडनं नाम बालक्रीडणकं तत: ।

प्रकीडता हि ते सर्वे द्वौ द्वौ युगपदुत्पतन् ॥

"इसके बाद उन्होंने बालकों का खेल खेला जो *हरिणा क्रीडनम्* कहलाता है, जिसमें प्रत्येक बालक विपक्ष से अपनी जोड़ी बनाता है और सारे बालक एकसाथ अपने अपने प्रतिद्वन्द्वी पर धावा बोलते हैं।"

वहन्तो वाह्यमानाश्च चारयन्तश्च गोधनम् ।
भाण्डीरकं नाम वटं जग्मुः कृष्णपुरोगमाः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

वहन्तः—चढ़ते; वाह्यमानाः—चढ़ाते हुए; च—तथा; चारयन्तः—चराते हुए; च—भी; गो-धनम्—गौवों को; भाण्डीरकम् नाम—भाण्डीरक नामक; वटम्—बरगद के पेड़ तक; जग्मुः—गये; कृष्ण-पुरः-गमाः—कृष्ण को आगे करके।

इस तरह एक दूसरे पर चढ़ते और चढ़ाते हुए और साथ ही गौवें चराते सारे बालक कृष्ण के पीछे पीछे भाण्डीरक नामक बरगद के पेड़ तक गये।

तात्पर्य : श्रील सनातन गोस्वामी ने *श्री हरिवंश* (विष्णु पर्व ११.१८-२२) से निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किये हैं जिनमें वटवृक्ष का वर्णन हुआ है :

ददर्श विपुलोदग्रशाखिनं शाखिनां वरम् ।

स्थितं धरण्यां मेघाभं निबिडं दलसञ्चयै ॥

गगनार्धोच्छ्रिताकारं पर्वताभोगधारिणम् ।

नीलचित्राङ्गवर्णैश्च सेवितं बहुभिः खगै ॥

फलै प्रवालैश्च घनै सेन्द्रचापघनोपमम् ।

भवनाकारविटपं लतापुष्प सुमंडितम् ॥

विशालमूलावनतं पावनाम्भोदधारिणम् ।

आधिपत्यमिवान्येषां तस्य देशस्य शाखिनाम् ॥

कुर्वाणं शुभकर्माणं निरावर्षमनातपम् ।

न्यग्रोधं पर्वताग्राभं भाण्डीरं नाम नामतः ॥

''उन्होंने सबसे बढ़िया उस वृक्ष को देखा जिसमें अनेक लम्बी लम्बी शाखाएँ थीं। अपनी घनी पत्तियों के आच्छादन से वह ऐसा लगता था मानो पृथ्वी पर कोई बादल बैठा हो। इसका स्वरूप इतना विराट था कि यह आधे आकाश को ढके हुए पर्वत के समान लग रहा था। उस विशाल वृक्षमें नीले पंख वाले अनेक सुन्दर पक्षी आते थे जिससे यह वृक्ष अपने सघन फलों तथा पत्तियों के कारण उस बादल के समान प्रतीत होता था जिसमें इन्द्रधनुष उगा हो या कोई घर हो जिसे लताओं तथा पुष्पों से सजाया गया हो। इसकी चौड़ी जड़ें नीचे की ओर फैल रही थीं और यह अपने ऊपर पवित्र बादलों को धारण किये हुए था। वह वटवृक्ष आसपास के अन्य वृक्षों का स्वामी तुल्य था क्योंकि यह वर्षा तथा

धूप को दूर रखने का सर्वमंगलमय कार्य करता था। यह न्यग्रोध, जिसका नाम भाण्डीर था, एक विशाल पर्वत की चोटी जैसा लगता था।''

रामसङ्घट्टिनो यर्हि श्रीदामवृषभादयः ।
क्रीडायां जयिनस्तांस्तानूहुः कृष्णादयो नृप ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

राम-सङ्घट्टिनः—बलराम की टोली के सदस्य; यर्हि—जब; श्रीदाम-वृषभ-आदयः—श्रीदामा, वृषभ तथा अन्य (यथा सुबल); क्रीडायाम्—खेलों में; जयिनः—विजयी; तान् तान्—इनमें से प्रत्येक; ऊहुः—चढ़ाते थे; कृष्ण-आदयः—कृष्ण तथा उनकी टोली के अन्य सदस्य; नृप—हे राजन्।.

हे राजा परीक्षित, जब इन खेलों में भगवान् बलराम की टोली के श्रीदामा, वृषभ तथा अन्य सदस्य विजयी होते तो कृष्ण तथा उनके साथियों को उन सबों को अपने ऊपर चढ़ाना पड़ता था।

उवाह कृष्णो भगवान्श्रीदामानं पराजितः ।
वृषभं भद्रसेनस्तु प्रलम्बो रोहिणीसुतम् ॥ २४॥

शब्दार्थ

उवाह—चढ़ाते थे; कृष्णः—कृष्ण; भगवान्—भगवान्; श्रीदामानम्—अपने भक्त तथा सखा श्रीदामा को; पराजितः—हार कर; वृषभम्—वृषभ को; भद्रसेनः—भद्रसेन; तु—तथा; प्रलम्बः—प्रलम्ब; रोहिणी-सुतम्—रोहिणी पुत्र (बलराम) को।.

हार कर, भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीदामा को अपने ऊपर चढ़ा लिया। भद्रसेन ने वृषभ को तथा प्रलम्ब ने रोहिणी पुत्र बलराम को चढ़ा लिया।

तात्पर्य : कोई यह प्रश्न कर सकता है कि भगवान् को उनके मित्र किस तरह हरा सकते हैं। इसका उत्तर यह है कि ईश्वर अपने मूल रूप में अत्यन्त खिलाड़ी प्रकृति के होते हैं और कभी कभी अपने प्रिय मित्रों की इच्छा या बल के समक्ष झुक कर आनन्द लेते हैं। कभी कभी पिता अपने छोटे से प्रिय पुत्र द्वारा प्रहार किये जाने पर खेल खेल में जमीन पर गिर पड़ता है। स्नेह-भरे इन कार्यों से सारे लोगों को आनन्द प्राप्त होता है। इस तरह श्रीदामा अपने प्रिय मित्र श्रीकृष्ण को जो यों तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् थे, प्रसन्न करने के लिए उनके कन्धों पर चढ़ने के लिए राजी हो गये।

अविषह्यं मन्यमानः कृष्णं दानवपुङ्गवः ।
वहन्द्रुततरं प्रागादवरोहणतः परम् ॥ २५॥

शब्दार्थ

अविषह्यम्—दुर्दम; मन्यमानः—विचार करते हुए; कृष्णम्—कृष्ण को; दानव-पुङ्गवः—वह अग्रगण्य असुर; वहन्—ले जाते हुए; द्रुत-तरम्—तेजी से; प्रागात्—चलने लगा; अवरोहणतः परम्—उतारने के लिए निश्चित स्थान से आगे।.

भगवान् कृष्ण को दुर्दम सोच कर वह जाना आना असुर (प्रलम्ब), बलराम को तेजी से उस स्थान से बहुत आगे ले गया जहाँ उतारना निश्चित किया गया था।

तात्पर्य : प्रलम्ब बलराम को भगवान् कृष्ण की नजर से दूर ले जाना चाहता था जिससे वह उन पर वार कर सके।

तमुद्वहन्धरणिधरेन्द्रगौरवं
महासुरो विगतरयो निजं वपुः ।
स आस्थितः पुरटपरिच्छदो बभौ
तडिद्द्युमानुडुपतिवाडिवाम्बुदः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

तम्—उन्हें, बलदेव को; उद्वहन्—ऊँचे ले जाकर; धरणि-धर-इन्द्र—पर्वतों के राजा सुमेरु की तरह; गौरवम्—भार; महा-असुरः—महान् असुर; विगत-रयः—अपना वेग खो कर; निजम्—अपने असली; वपुः—शरीर को; सः—वह ना; आस्थितः—स्थित होकर; पुरट—सुनहरे; परिच्छदः—आभूषणों से युक्त; बभौ—चमक रहा था; तडित्—बिजली की तरह; द्यु-मान्—चमकीला; उडु-पति—चन्द्रमा; वाट्—वहन करते हुए; इव—सदृश; अम्बु-दः—बादल।.

जब वह महान् असुर बलराम को लिये जा रहा था, तो वे विशाल सुमेरु पर्वत की तरह भारी हो गये जिससे प्रलम्ब को अपना गति धीमी करनी पड़ी। इसके बाद उसने अपना असली रूप धारण किया—तेजमय शरीर जो सुनहरे आभूषणों से ढका था और उस बादल के समान लग रहा था जिसमें बिजली चमक रही हो और जो अपने साथ चन्द्रमा लिये जा रहा हो।

तात्पर्य : यहाँ पर प्रलम्बासुर की उपमा बादल से, उसके सुनहरे आभूषणों की उपमा बादल के भीतर चमकने वाली बिजली से तथा बलराम की उपमा बादल के भीतर चमक रहे चन्द्रमा से दी गई है। महान् असुर अपनी योग शक्ति से अनेक रूप धारण कर सकते हैं किन्तु जब भगवान् की आध्यात्मिक शक्ति उनकी शक्ति को कम कर देती है, तो उन्हें अपना कृत्रिम रूप त्याग कर असली आसुरी शरीर धारण करना पड़ता है। भगवान बलराम सहसा विशाल पर्वत के समान भारी हो गये जिससे वह असुर उन्हें अपने कंधों पर ऊँचे चढ़ा कर नहीं ले जा सका।

निरीक्ष्य तद्वपुरलमम्बरे चरत्
प्रदीप्तदृग्भ्रुकुटितटोग्रदंष्ट्रकम् ।

ज्वलच्छिखं कटककिरीटकुण्डल-
त्विषाद्भुतं हलधर ईषदत्रसत् ॥ २७॥

शब्दार्थ

निरीक्ष्य—देखकर; तत्—उस प्रलम्बासुर का; वपुः—शरीर; अलम्—तेजी से; अम्बरे—आकाश में; चरत्—विचरण करते; प्रदीप्त—प्रज्ज्वलित; दृक्—आँखें; भ्रु-कुटि—अपनी भौंहों पर के गुस्से का; तट—किनारे पर; उग्र—भयानक; दंष्ट्रकम्—दाँतों को; ज्वलत्—अग्नि तुल्य; शिखम्—बाल; कटक—अपने बाजूबन्द; किरीट—मुकुट; कुण्डल—तथा कुंडलों के; त्विषा—तेज से; अद्भुतम्—आश्चर्यजनक; हल-धरः—हल धारण करने वाले, बलराम; ईषत्—टुक, थोड़ा; अत्रसत्—भयभीत हुए।

जब हलधर भगवान् बलराम ने आकाश में विचरण करते हुए उस असुर की जलती हुई आँखें, अग्नि सदृश बाल, भौंहों तक उठे भयानक दाँत तथा उसके बाजूबन्दों, मुकुट तथा कुंडलों से उत्पन्न आश्चर्यजनक तेज युक्त विराट शरीर को देखा तो वे कुछ कुछ भयभीत से हो गये।

तात्पर्य : श्रील सनातन गोस्वामी ने भगवान् बलदेव के तथाकथित भय की व्याख्या इस प्रकार की है : बलराम एक सामान्य ग्वालबाल के रूप में क्रीड़ा कर रहे थे अतएव इस लीला-भाव को बनाये रखने के लिए वे असुर के भयानक शरीर से कुछ कुछ विचलित हो गये। दूसरे यह कि वह असुर कृष्ण के ग्वालमित्र के रूप में प्रकट हुआ था और कृष्ण ने उसे मित्र मान लिया था अतएव बलदेव उसको जान से मारने में हिचकिचा रहे थे। बलराम की चिन्ता का एक कारण यह भी हो सकता था कि यह वास्तव में ग्वालबाल के वेश में असुर था, तो हो सकता है कि उसी क्षण ऐसा ही कोई दूसरा असुर कृष्ण पर भी आक्रमण कर रहा हो। इस तरह सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान भगवान् बलदेव ने भयावने प्रलम्बासुर के समक्ष कुछ कुछ शिथिल होने की लीला प्रकट की।

अथागतस्मृतिरभयो रिपुं बलो
विहाय सार्थमिव हरन्तमात्मनः ।
रुषाहनच्छिरसि दृढेन मुष्टिना
सुराधिपो गिरिमिव वज्ररंहसा ॥ २८॥

शब्दार्थ

अथ—तब; आगत-स्मृतिः—अपना स्मरण करते हुए; अभयः—निर्भय; रिपुम्—शत्रु को; बलः—बलराम ने; विहाय—छोड़कर; सार्थम्—साथ; इव—निस्सन्देह; हरन्तम्—हरण करते हुए; आत्मनः—अपने आप; रुषा—क्रोध के साथ; अहनत्—प्रहार किया; शिरसि—सिर के ऊपर; दृढेन—कठोर; मुष्टिना—अपनी मुट्ठी से; सुर-अधिपः—देवताओं के राजा, इन्द्र; गिरिम्—पर्वत पर; इव—सदृश; वज्र—वज्र का; रंहसा—फुर्ती से।

वास्तविक स्थिति का स्मरण करते हुए निर्भीक बलराम की समझ में आ गया कि यह असुर मेरा अपहरण करके मुझे मेरे साथियों से दूर ले जाने का प्रयास कर रहा है। तब वे क्रुद्ध हो उठे

और उन्होंने असुर के सिर पर अपनी कठोर मुट्ठी से उसी तरह प्रहार किया जिस प्रकार देवताओं के राजा इन्द्र अपने वज्र से पर्वत पर प्रहार करते हैं।

तात्पर्य : भगवान् बलराम की बलिष्ठ मुट्ठी असुर के सिर पर ऐसे पड़ी कि उस के टुकड़े टुकड़े हो गये जिस तरह विशाल वज्रपात से पर्वत चूर चूर हो जाता है। *विहाय सार्थम् इव* पद का सन्धि-विच्छेद *विहायसा अर्थम् इव* के रूप में भी किया जा सकता है, जिसका अर्थ होगा कि वह असुर *विहायस* अर्थात् आकाश के विराट पथ पर बलराम को ले जाने के उद्देश्य से उड़ रहा था क्योंकि वे ही उसके अर्थम् अर्थात् खोज की वस्तु थे।

स आहतः सपदि विशीर्णमस्तको
मुखाद्वमन्रुधिरमपस्मृतोऽसुरः ।
महारवं व्यसुरपतत्समीरयन्
गिरिर्यथा मघवत आयुधाहतः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

सः—वह, प्रलम्बासुर; आहतः—प्रहार किया गया; सपदि—तुरन्त; विशीर्ण—विदीर्ण; मस्तकः—सिर; मुखात्—मुँह से; वमन्—उगलता हुआ; रुधिरम्—रक्त; अपस्मृतः—बेहोश; असुरः—असुर; महा-रवम्—भीषण शब्द; व्यसुः—निर्जीव; अपतत्—गिर पड़ा; समीरयन्—आवाज करता हुआ; गिरिः—पर्वत; यथा—जिस तरह; मघवतः—इन्द्र के; आयुध—हथियार से; आहतः—चोट खाकर।

बलराम की मुट्ठी के प्रहार से प्रलम्ब का सिर तुरन्त ही फट गया। वह मुख से रक्त उगलने लगा और बेहोश हो गया। तत्पश्चात् वह निष्प्राण होकर पृथ्वी पर भीषण धमाके के साथ ऐसे गिर पड़ा मानो इन्द्र द्वारा विनष्ट कोई पर्वत हो।

दृष्ट्वा प्रलम्बं निहतं बलेन बलशालिना ।
गोपाः सुविस्मिता आसन्साधु साध्विति वादिनः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देखकर; प्रलम्बम्—प्रलम्बासुर को; निहतम्—मारा गया; बलेन—बलराम द्वारा; बल-शालिना—बलशाली; गोपाः—ग्वालबाल; सु-विस्मिताः—अत्यन्त चकित; आसन्—हुए; साधु साधु—''अति उत्तम,'' ''अति उत्तम''; इति—ये शब्द; वादिनः—कहते हुए।

ग्वालबाल यह देखकर अत्यन्त चकित थे कि बलशाली बलराम ने किस तरह प्रलम्बासुर को मार डाला और वे सभी ''बहुत खूब'' ''बहुत खूब'' कहकर चिल्ला उठे।

आशिषोऽभिगृणन्तस्तं प्रशशंसुस्तदर्हणम् ।
प्रेत्यागतमिवालिङ्ग्य प्रेमविह्वलचेतसः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

आशिषः—आशीर्वाद; अभिगृणन्तः—भेंटें देते हुए; तम्—उन्हें; प्रशशंसुः—प्रशंसा की; तत्-अर्हणम्—उस सुपात्र को; प्रेत्य—मरकर; आगतम्—वापस आया हुआ; इव—मानो; आलिन्य—आलिंगन करते हुए; प्रेम—प्रेमवश; विह्वल—भावविभोर; चेतसः—मन।

उन्होंने बलराम को खूब आशीर्वाद दिया और सभी तरह की प्रशंसा के पात्र होने के कारण उनकी खूब प्रशंसा की। उनके मन प्रेम से विभोर हो उठे और उन्होंने उनका इस प्रकार आलिंगन किया मानो वे मरकर लौटे हों।

पापे प्रलम्बे निहते देवाः परमनिर्वृताः ।
अभ्यवर्षन्बलं माल्यैः शशंसुः साधु साध्विति ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

पापे—पापी; प्रलम्बे—प्रलम्बासुर पर; निहते—मारे जाने पर; देवाः—देवताओं ने; परम—अत्यधिक; निर्वृताः—प्रसन्न; अभ्यवर्षन्—बरसाया; बलम्—बलराम को; माल्यैः—मालाओं से; शशंसुः—स्तुतियाँ की; साधु साधु इति—''अति उत्तम'' ''अति उत्तम'' आलाप करते हुए।''

पापी प्रलम्बासुर के मारे जाने पर देवता अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने बलराम पर फूलमालाओं की वर्षा की। उन्होंने उनके उत्तम कार्य की प्रशंसा की।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''बलराम द्वारा प्रलम्बासुर का वध'' नामक अठारहवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।